वर्तमान मामले में प्रतिवादी को जानबूझकर उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। प्रतिवादी के साथ घोर अन्याय होगा। मुझे कोई कारण नहीं मिला विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, लुधियाना के तर्कों को खारिज करने के लिए।

वर्तमान मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में ट्रायल कोर्ट के आदेश को संशोधित करने और आवेदन की तारीख से भरण-पोषण की अनुमति देने का पूरा औचित्य था। परिणामस्वरूप पुनरीक्षण याचिका विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है।

जे एस टी

माननीय जी. एस. सिंघवी *और एन. के. सोधी, जे. जे.* के समक्ष

अपने स्वयं के आंदोलन पर अदालत।

बनाम

श्री एन. एस. कंवर, एग्जीक्यूटिव इंजीनियर, प्रोविंशियल डिवीजन, पी. डब्ल्यू. डी.ी एंड *आर), नारायणगढ़, जिला 1-उत्तरदाता।*

1994 की सिविल मूल अवमानना याचिका संख्या 721

18 अगस्त, 1994।

न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971-धारा 2(बी)-जानबूझकर की गई अवज्ञा-उसका अर्थ-प्रतिवादी को न्यायालय के आदेश के बारे में पूरी जानकारी होना-उन आदेशों के अनुपालन के लिए कोई कदम नहीं उठाना-ऐसा प्रतिवादी न्यायालय की अवमानना करता है।

माना गया कि अदालत की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 2 (बी) में इस्तेमाल किए गए शब्द 'जानबूझकर अवज्ञा' का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि सभी मामलों में एक कार्रवाई को सिविल अवमानना के रूप में माना जाना चाहिए। यदि कोई पक्ष जो न्यायालय के आदेश के बारे में पूरी जानकारी रखता है या न्यायालय के आदेश के परिणामों और निहितार्थों से अवगत है, उसकी अनदेखी करता है या न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करता है, तो यह माना जाना चाहिए कि अवज्ञा जानबूझकर की गई है।कार्य या चूक के पीछे के वास्तविक इरादे को साबित करना कभी भी व्यावहारिक नहीं है। एक न्यायालय इस प्रश्न पर केवल निष्पक्ष रूप से विचार कर सकता है और वह किए गए कार्य से आशय का अनुमान लगा सकता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति से यह माना जाता है कि वह अपने कार्य के संभावित परिणाम का इरादा रखता है।

(पैरा 24)

इसके अलावा, यह माना गया कि प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश की पूरी जानकारी होने के बावजूद एक वर्ष और छह महीने से अधिक की अवधि के लिए अदालत के आदेश को पूरा करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। प्रतिवादी की ओर से पूर्ण चुप्पी और न्यायालय के आदेश के अनुपालन के लिए एक भी कदम उठाने में उसकी पूर्ण विफलता, प्रतिवादी के मन की प्रवृत्ति का पर्याप्त रूप से संकेत देती है अर्थात न्यायालय के आदेश की अनदेखी करना। प्रतिवादी न्यायालय के आदेश का पालन करने के अपने कर्तव्य में पूरी तरह से लापरवाह था। प्रतिवादी की ओर से एक वर्ष और छह महीने से अधिक की अवधि तक चुप्पी और अदालत के आदेश का पालन करने में उसकी विफलता को अदालत के आदेश की जानबूझकर अवज्ञा के रूप में नहीं माना जा सकता है।

(पैरा 9)

याचिकाकर्ता के वकील डी. आर. शर्मा।

सुरेश मोंगा, डीएजी, हरियाणा, आर.के. मलिक, वकील, की ओर से प्रतिवादी की ओर से एन.एस. कंवर।

आदेश

निर्णय

जी. एस. सिंघवी, जे.

यह मामला कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों की दुर्दशा का उदाहरण है, जिन्हें अपनी सेवा शर्तों के संबंध में अपने मूल अधिकारों को लागू करने के लिए एक से अधिक बार मुकदमा करना पड़ता है। यह प्रशासन में बढ़ती बीमारी और प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा न्यायालय के आदेशों की अवहेलना के रवैये का भी उदाहरण है। जो इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि न्यायालय के आदेशों का पालन न करने या उसका उल्लंघन करने की उनकी कार्रवाई और चूक से संपूर्ण संवैधानिक व्यवस्था की बदनामी होती है। ठाकुर सिंह और अन्य ने 1990 की रिट याचिका संख्या 1093 दायर की जिसमें उत्तरदाताओं को उनकी सेवा को नियमित करने का निर्देश जारी करने की प्रार्थना की गई।

इस याचिका का निपटारा 3 दिसंबर 1992 को उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों को हरियाणा राज्य बनाम पियारा सिंह (1) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के संदर्भ में नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार/पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ कर दिया था।

अदालत ने कहा कि याचिकाकर्ताओं को नियमितीकरण की राहत तभी दी जानी चाहिए, जब वे इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा जारी फैसले या किसी अन्य अनुवर्ती निर्देशों के दायरे में आते हों। हालाँकि 3 दिसंबर, 1992 के आदेश का पालन प्रतिवादियों द्वारा नहीं किया गया, बल्कि अवमानना याचिका दायर करने के बजाय, 1990 की सिविल रिट याचिका संख्या 1093 में याचिकाकर्ताओं में से दो याचिकाकर्ताओं, ठाकुर सिंह और मुंशी ने, दूसरी याचिका दायर की जो सी.डब्ल्यू.पी.नं. 1994 का 263 के रूप में पंजीकृत हुई।.

1992 (4) एस. सी. सी 118

इस याचिका में, याचिकाकर्ताओं ने कहा कि उन्हें वर्ष 1977 में हरियाणा सरकार के लोक निर्माण विभाग में बेलदार के रूप में नियुक्त किया गया था और हालांकि वे 1977 से लगातार काम कर रहे हैं, उन्हें दैनिक वेतन भोगी के रूप में भुगतान किया गया है और उनकी सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है। याचिकाकर्ताओं ने आगे कहा कि हरियाणा सरकार के मुख्य सचिव ने 31 मार्च, 1993 को पांच साल की सेवा पूरी करने वाले कार्य प्रभारित/आकस्मिक/दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों की सेवा को नियमित करने के लिए 27 मई, 1993 को निर्देश जारी किए थे और हालांकि उच्च न्यायालय ने पियारा सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में उनके मामले पर विचार करने के लिए दिनांक 3 दिसंबर, 1992 को आदेश पारित किया था, प्रतिवादियों द्वारा उनकी सेवा को नियमित करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई है।जवाब में, उत्तरदाताओं ने याचिकाकर्ताओं के इस कथन का खंडन नहीं किया कि वे 1977 से रोजगार में हैं। हालांकि, उन्होंने दलील दी कि याचिकाकर्ता सुप्रीम कोर्ट के फैसले और हरियाणा सरकार के नीतिगत निर्णय में निर्दिष्ट शर्तों को पूरा नहीं करते हैं। इस कारण वे नियमितीकरण के हकदार नहीं हैं।

जब रिट याचिका 20 जुलाई, 1994 को न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध की गई, तो हरियाणा के विद्वान उप महाधिवक्ता के अनुरोध पर मामले को 22 जुलाई, 1994 के लिए स्थगित कर दिया गया। 22 जुलाई, 1994 को विद्वान डीएजी, हरियाणा ने बयान दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा 3 दिसम्बर, 1992 को सी.डब्ल्यू.पी. में पारित आदेश सही नहीं है। 1990 की संख्या 1093 का अनुपालन कार्यकारी अभियंता, प्रांतीय डिवीजन, पी.डब्ल्यू.डी (बी एंड आर) नारायणगढ़, जिला यमुनानगर द्वारा 21 जुलाई, 1994 को आदेश पारित करके किया गया है। उन्होंने बयान दिया कि सेवा में नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे को खारिज कर दिया गया है। उस स्तर पर, अदालत ने उनसे पूछा कि 3 दिसंबर, 1992 के अदालत के आदेश के अनुपालन के लिए इतने लंबे समय तक

कदम क्यों नहीं उठाए गए। विद्वान उप महाधिवक्ता ने इस संबंध में कोई भी औचित्य बताने में असमर्थता व्यक्त की। इस तथ्य पर ध्यान देने के बाद कि पिछले 1 वर्षों से न्यायालय के आदेश का अनुपालन न करने के लिए सामान्य रूप से उत्तरदाताओं और विशेष रूप से प्रतिवादी कार्यकारी अभियंता द्वारा कोई औचित्य पेश नहीं किया गया है, जिसने याचिकाकर्ताओं को दूसरी याचिका दायर करने के लिए मजबूर किया है। अदालत ने स्वत: संज्ञान लेते हुए तत्कालीन गैर-याचिकाकर्ताओं के खिलाफ अवमानना की कार्यवाही शुरू की। कोर्ट द्वारा जारी नोटिस के जवाब में, प्रतिवादी एन.एस. कंवर ने एक हलफनामा दायर किया है जिसमें कहा गया है कि हालांकि

हरियाणा सरकार ने 27 मई, 1993 को उन दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों को नियमित करने के निर्देश जारी किए, जिन्होंने 51 मार्च, 1998 को 5 साल की सेवा पूरी कर ली थी और जो टीएनटी तिथि पर सेवा में नहीं थे। सरकार के उस नीतिगत निर्णय में यह निर्दिष्ट नहीं किया गया था कि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों की सेवा में व्यवधान का इलाज कैसे किया जाएगा। इंजीनियर-टा-चीफ, आर.डब्ल्यू.डी. (बी एंड आरजे, हरियाणा ने बाद में कहा कि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के मामले में, एक वर्ष में 240 दिनों के लिए प्रदान की गई सेवा पर विचार किया जाएगा। इसके बाद 18 मार्च, 1994 को निर्देशों का एक और सेट जारी किया गया था जिसके तहत यह था) इसमें कहा गया है कि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी की सेवा में एक बार में 80 दिन से अधिक का ब्रेक नहीं होना चाहिए और उसे साल में 240 दिन काम करना चाहिए।

सरकार के नीतिगत निर्णय की प्रयोज्यता के बारे में कुछ और निर्देश जारी किए गए और उन्हें हरियाणा सरकार द्वारा 31 मई, 1994 के परिपत्र के माध्यम से प्रसारित किया गया। प्रतिवादी ने दावा किया कि चूंकि हरियाणा सरकार ने अपने परिपत्र दिनांक 3 मई, 1994 के माध्यम से स्थिति स्पष्ट कर दी है, नीतिगत निर्णय अनुलग्नक आर/एल के तहत सेवा के नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे पर 31 मई, 1994 के बाद ही विचार किया जा सकता है। कहा गया कि याचिकाकर्ताओं ठाकुर सिंह और मुंशी राम का दावा नीतिगत निर्णय के तहत शामिल नहीं था और इसलिए, इसे 21 जुलाई, 1994 को खारिज कर दिया गया था। प्रतिवादी आगे दलील दी गई है कि ठाकुर सिंह को नवंबर, 1988 और दिसंबर, 1988 में 30 दिनों से अधिक का अवकाश मिला था और उन्होंने वर्ष 1988-89 में 240 दिनों की सेवा पूरी नहीं की थी। मुंशी राम के मामले में 1988 के दौरान 30 दिनों का अवकाश था और उन्होंने वर्ष 1£3सी-जीजे और 1992-93 के दौरान 240 दिनों की सेवा पूरी नहीं की थी। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ताओं द्वारा सुप्रीम कोर्ट के फैसले को कभी भी उनके संज्ञान में नहीं लाया गया।यह निर्णय अधिवक्ता द्वारा उनके संज्ञान में लाया गया था और उस निर्णय से पता चलता है कि हरियाणा सरकार के नीतिगत निर्णय के अनुसार, दिनांक 6 अप्रैल, 1990 को पत्र द्वारा प्रसारित किया गया था। जिन याचिकाकर्ताओं ने दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में 10 साल की सेवा पूरी कर ली थी, वे नियमित होने के हकदार थे। निर्णय की जानकारी प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ताओं की सेवा को नियमित करने के लिए आदेश अनुलग्नक आर/7 और आर/8 जारी किए गए हैं। प्रतिवादी ने एक बयान दिया है कि यद्यपि हरियाणा सरकार ने अपना नीतिगत निर्णय दिनांक 6 अप्रैल, 1990 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष रखा था, लेकिन इसे हरियाणा सरकार के किसी भी विभाग में प्रसारित नहीं किया गया था और इसलिए, अभिसाक्षी उस नीतिगत निर्णय के अनुसार सेवा के नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ताओं के मामलों पर विचार नहीं कर सका। अंत में, प्रतिवादी ने व्यक्त किया कि उसके मन में न्यायपालिका के प्रति सर्वोच्च सम्मान है और उसने बिना शर्त माफी मांगी है।

अवमानना याचिका पर सुनवाई के दौरान 8 अगस्त, 1994 को न्यायालय के समक्ष दो और आदेश दायर किए गए। इन आदेशों के द्वारा याचिकाकर्ताओं ठाकुर सिंह और मुंशी राम की सेवाओं को 1 अक्टूबर, 1988 से नियमित कर दिया गया है और यह कहा गया है कि वे सभी परिणामी लाभों के हकदार होंगे, प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री मलिक ने एक मौखिक बयान दिया कि आज से एक महीने के भीतर, याचिकाकर्ताओं को सभी मौद्रिक लाभों का भुगतान किया जाएगा।

प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील का तर्क यह है कि यद्यपि उच्च न्यायालय ने 3 दिसंबर, 1992 को हरियाणा राज्य बनाम पीयूरा सिंह मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार याचिकाकर्ताओं की सेवा को नियमित करने के मामलों पर विचार करने का निर्देश दिया था और हरियाणा सरकार द्वारा जारी निर्देश, प्रतिवादी हरियाणा सरकार से स्पष्ट निर्देशों के अभाव में उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुपालन के लिए कोई कदम नहीं

उठा सका। श्री मलिक ने कहा कि हरियाणा सरकार ने 10 साल की सेवा पूरी कर चुके दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों के नियमितीकरण के संबंध में अपने पत्र दिनांक 6 अप्रैल, 1990 में निहित नीतिगत निर्णय को प्रसारित नहीं किया। उन्होंने तर्क दिया कि 6 अप्रैल, 1990 के परिपत्र के बारे में जानकारी की कमी के कारण, प्रतिवादी याचिकाकर्ताओं की सेवा को नियमित करने का आदेश जारी नहीं कर सका। श्री मलिक ने आगे तर्क दिया कि चूंकि हरियाणा सरकार ने दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों के नियमितीकरण के विषय पर स्पष्ट निर्देश जारी नहीं किए हैं, इसलिए विभिन्न विभागीय अधिकारियों द्वारा स्पष्टीकरण मांगा गया है और मई, 1994 में ही सरकार ने दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों की सेवा को नियमित करने के अपने नीतिगत निर्णय के कार्यान्वयन के संबंध में स्पष्टीकरण जारी किया। श्री मलिक ने तर्क दिया कि इस स्थिति में, प्रतिवादी को अदालत के आदेश की कथित अवज्ञा के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। उन्होंने दलील दी कि प्रतिवादी हरियाणा सरकार द्वारा जारी निर्देशों पर निर्भर है और जब तक उन्हें सरकार से स्पष्टीकरण नहीं मिल जाता, वह अदालत के आदेश को प्रभावी करने की स्थिति में नहीं थे, खासकर तब जब उन्हें सरकार के 5, 6 अप्रैल, 1900 तारीख के परिपत्र के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

न्यायालय का आदेश दिनांक 3 दिसंबर 1992 जो उच्च न्यायालय द्वारा 1990 के सी.डब्ल्यू.पी.1093 में पारित किया गया था, इस प्रकार है: -

“याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के संबंध में याचिका का निपटारा उत्तरदाताओं को हरियाणा राज्य बनाम प्लाटा सिंह 1992 (5) एस.पी.जे. मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के संदर्भ में नियमितीकरण के लिए उनके दावे पर विचार/पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ किया गया। उक्त याचिकाकर्ताओं को यह राहत तभी दी जाएगी जब यह पाया जाएगा कि उनका मामला राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में जारी किए गए फैसले या किसी अन्य निर्देश के दायरे में आता है”|

3 दिसंबर, 1992 के आदेश की बारीकी से जांच करने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उच्च न्यायालय दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों की सेवा को नियमित करने के संबंध में हरियाणा राज्य बनाम पियारा सिंह (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश के प्रति सचेत था। यह इस तथ्य से भी अवगत था कि पियारा सिंह के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद हरियाणा सरकार ने कुछ अन्य निर्देश जारी किए होंगे और ठीक इसी कारण से इस अदालत ने यह स्पष्ट कर दिया कि याचिकाकर्ताओं को राहत केवल तभी दी जाएगी जब वे राज्य सरकार द्वारा जारी फैसले और उसके बाद जारी निर्देशों के अनुसार नियमितीकरण के हकदार पाए जाते हैं। हालाँकि, अदालत का न तो इरादा था और न ही यह माना जा सकता था कि अदालत के पास भविष्य में यानी 3 दिसंबर, 1992 के बाद जारी किए जाने वाले निर्देशों की कोई जानकारी थी। न्यायालय के आदेश में स्पष्ट रूप से उन निर्देशों का उल्लेख किया गया है जो पियारा सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद हरियाणा सरकार द्वारा जारी किए गए होंगे।

हमारे सामने इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि प्रतिवादी-एन.एस कंवर को न्यायालय द्वारा पारित आदेश की जानकारी थी। इसलिए, यह मानना उचित है कि उन्हें इस तथ्य की पूरी जानकारी थी कि पियारा सिंह के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले और जारी किए गए निर्देशों के अनुसार सेवा को नियमित करने के लिए याचिकाकर्ताओं के मामलों पर विचार किया जाना आवश्यक है। उसके बाद राज्य सरकार द्वारा। सरकार का 27 मई 1993 का परिपत्र 1990 के सी.डब्ल्यू.पी1093 में 3 दिसंबर 1992 के आदेश के पारित होने की तिथि पर अस्तित्व में नहीं था। इसलिए, सरकार द्वारा जारी स्पष्टीकरण/निर्देशों के अभाव में, प्रतिवादी द्वारा न्यायालय के आदेश का पालन करने में असमर्थता के बारे में जो कहानी गढ़ी गई है, उसे स्वीकार करना संभव नहीं है।यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जहां तक प्रतिवादी का सवाल है, उसने अपनी ओर से पियारा सिंह के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के दायरे और 'प्रयोज्यता' के बारे में कभी कोई संदेह नहीं जताया। उन्होंने अपनी ओर से सरकार के मौजूदा निर्देशों में कथित अस्पष्टता के स्पष्टीकरण के लिए विभागीय अधिकारियों को एक भी पत्र नहीं लिखा। वास्तव में उनका पूरा हलफनामा उनके द्वारा किए गए प्रयासों और न्यायालय के आदेश के कार्यान्वयन के लिए उठाए गए कदमों के बारे में स्पष्ट रूप से मौन है। इसलिए, हमारा दृढ़ मत है कि प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश की पूरी जानकारी होने के बावजूद एक वर्ष और छह महीने से अधिक की अवधि के लिए न्यायालय के आदेश को पूरा करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। प्रतिवादी की ओर से पूर्ण चुप्पी और न्यायालय के आदेश के अनुपालन के लिए एक भी कदम उठाने में उसकी पूर्ण विफलता, प्रतिवादी के मन की प्रवृत्ति का पर्याप्त रूप से संकेत देती है

अर्थात न्यायालय के आदेश की अनदेखी करना। प्रतिवादी न्यायालय के आदेश का पालन करने के अपने कर्तव्य में पूरी तरह से लापरवाह था। हमारा यह भी मानना है कि प्रतिवादी की ओर से एक वर्ष और छह महीने से अधिक समय तक चुप्पी और अदालत के आदेश का पालन करने में उसकी विफलता को अदालत के आदेश की जानबूझकर अवज्ञा के रूप में नहीं माना जा सकता है।

भारत के लोगों ने भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, गणराज्य बनाया है। राज्य के तीन अंग हैं, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। संविधान ने लोकतंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए इन तीनों अंगों के कार्य क्षेत्र का निर्धारण किया है। कानून का शासन बनाए रखने के लिए, जो प्रत्येक लोकतंत्र की आधारशिला है, प्रत्येक अंग को अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य करना होगा और राज्य के दूसरे अंग के अधिकार का सम्मान करना होगा। संविधान के तहत, विधायिका को सरकार के संवैधानिक प्रावधानों और नीतियों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाने का काम सौंपा गया है। जिनका उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास की स्वतंत्रता और स्थिति और अवसर की समानता के लक्ष्य को प्राप्त करना है। कार्यपालिका को इन विधायी अधिनियमों को प्रभावी करना है और सरकार के आदेशों को लागू करना है। न्यायपालिका को न्याय प्रशासन का कार्य सौंपा गया है। विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों की संवैधानिक वैधता और प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों पर निर्णय देने के लिए देश की न्यायपालिका पर एक पवित्र दायित्व लगाया गया है।

संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की व्यापक शक्तियाँ प्रदान की हैं। कार्यपालिका को निश्चित सीमा के भीतर रखना अदालतों का संवैधानिक दायित्व है। यहां तक कि विधायी उपकरण भी न्यायिक समीक्षा के अधीन हैं और यदि कोई कानून संविधान के विपरीत पाया जाता है या विधायिका की विधायी शक्ति से परे है तो अदालतों को इसे रद्द करने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। यद्यपि हमारे संविधान के तहत न्यायपालिका के पास पुलिस शक्ति नहीं है, लेकिन संवैधानिक ढांचे में निहित जांच और संतुलन की एक प्रणाली सभी को अदालत के आदेशों का सम्मान करने का आदेश देती है। यदि विधायिका या कार्यपालिका द्वारा अदालतों के आदेशों की अवहेलना की जाती है तो वह पूरी इमारत ढह जाएगी जिस पर लोकतांत्रिक व्यवस्था टिकी हुई है।

अदालत की अवमानना का विचार कानून के शासन के उद्भव के साथ उभरा है और आम तौर पर कोई भी आचरण जो कानून के अधिकार और प्रशासन को अपमानित या असम्मानजनक बनाता है या कोई भी कार्य जो न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करता है वह अदालत की अवमानना है।

भारत में "अवमानना के कानून" का इतिहास 1560 (मुग़ल काल) में पाया जा सकता है। स्टर्लिंग द्वारा "मुग़ल भारत में अपराध और सज़ा" में उद्धृत तब्दकुदी में उदाहरण पाए जा सकते हैं। जब अकबर पंजाब की ओर जा रहा था, तो हजर के जगराना में शाह अब्दुल मोहवाली ने अपनी कर्कश गाड़ी पर बैठकर उसे सलाम करना चाहा। अकबर को यह बात नागवार गुजरी और उसने उसे कैदी के रूप में हिरासत में रखने के लिए शहाबुद्दीन अहमद खान को सौंप दिया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा और राजा की परिषद की अवमानना के सिद्धांत के बारे में विवरण मिलता है। यहां तक कि कानून का उल्लंघन करने वाले न्यायाधीशों को भी सजा के लिए उत्तरदायी ठहराया गया। कौटिल्य का विचार था कि कानून का उल्लंघन करने वाले सभी व्यक्तियों को दंडित किया जाना चाहिए, जिसमें कानून का प्रशासन करने वाले भी शामिल हैं और वास्तव में बाद के मामले में सजा अधिक गंभीर होगी।

ओसवाल्ड ने 'न्यायालय की अवमानना' पर अपने काम में अवमानना को किसी भी ऐसे आचरण के रूप में परिभाषित किया है जो मुकदमेबाजी के दौरान कानून के अधिकार और प्रशासन को अपमानित या अपमानित करता है या पक्षकारों या उनके गवाहों के साथ हस्तक्षेप या पूर्वाग्रह पैदा करता है।

हमारे देश में विकसित आधुनिक अर्थों में न्यायालय की अवमानना का कानून अंग्रेजी कानून की तर्ज पर है। अवमानना को दंडित करने का स्रोत इंग्लैंड की सभी रिकॉर्ड अदालतों में एक अंतर्निहित शक्ति थी। जैसे ही भारत में विभिन्न चार्टरों के तहत अभिलेख न्यायालयों की स्थापना की गई, अवमानना को दंडित करने की शक्ति आवश्यक रूप से इन न्यायालयों को दी गई। 1950 में जब भारत का संविधान लागू हुआ तो इसमें अवमानना मामलों से संबंधित कुछ प्रावधान भी शामिल किये गये। कानून के विषयों के रूप में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च

न्यायालयों की अवमानना का उल्लेख संघ सूची और समवर्ती सूची में किया गया है। वर्ष 1952 में, संसद ने न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1952 अधिनियमित किया। लगभग दो दशकों की अवधि के दौरान विकसित हुए अवमानना कानून की जांच करने के बाद, संसद ने न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 अधिनियमित किया। 1971 के अधिनियम के तहत, 'अवमानना' शब्द को धारा 2 में परिभाषित किया गया है, जबकि धारा 2(बी) नागरिक अवमानना को परिभाषित करता है, धारा 2(सी) 'आपराधिक अवमानना' को परिभाषित करता है। वर्तमान मामले के प्रयोजन के लिए, 1971 अधिनियम की धारा 2 (ए) और (बी) का संदर्भ देना पर्याप्त है: -

"2. इस अधिनियम में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,

(ए) 'न्यायालय की अवमानना' का अर्थ नागरिक अवमानना या आपराधिक अवमानना है

(बी), सिविल अवमानना' का अर्थ है अदालत के किसी भी फैसले, डिक्री, निर्देश, आदेश, रिट या अन्य प्रक्रिया के प्रति जानबूझकर अवज्ञा करना या अदालत को दिए गए वचन का जानबूझकर उल्लंघन करना।"

2.ए. एल.आर. 1954 एस. सी. 10.
3.ए. एल.आर. 1970 एस. सी. 1767
4.1980 (3) एस. सी. सी. 311

उपरोक्त उद्धृत परिभाषा अंग्रेजी और भारतीय न्यायालयों द्वारा समय-समय पर व्यक्त किये गये विचारों के अनुरूप है और भारत में संसद ने 'न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971' बनाकर अवमानना के कानून को एक ठोस आकार देने का प्रयास किया है। अवमानना कार्यवाही का उद्देश्य मुख्य रूप से न्याय प्रशासन प्रणाली में जनता के विश्वास की रक्षा करना है।

ब्राह्मण प्रकाश शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवमानना कार्यवाही के उद्देश्य को निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया:

"उच्च न्यायालयों द्वारा अपने अधिकार की अवमानना को दंडित करने में उपयोग किया जाने वाला संक्षिप्त क्षेत्राधिकार न्याय के पाठ्यक्रम में हस्तक्षेप को रोकने के उद्देश्य से मौजूद है और अदालतों में प्रशासित कानून के अधिकार को बनाए रखने के लिए। अवमानना कार्यवाही का उद्देश्य न्यायाधीशों को उन आरोपों से व्यक्तिगत रूप से सुरक्षा प्रदान करना नहीं है, जिनके प्रति उन्हें व्यक्तिगत रूप से उजागर किया जा सकता है, इसका उद्देश्य जनता को सुरक्षा प्रदान करना है, जिनके हित किसी भी पक्ष के कार्य या आचरण से बहुत अधिक प्रभावित होंगे। इससे लोगों में न्याय प्रशासन के प्रति जो विश्वास की भावना है, वह कमजोर होती है।"

अलीगढ़ म्युनिसिपल बोर्ड बनाम एक्का टोंगा मजदूर यूनियन और अन्य (3) में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"अदालत के आदेश का पालन करने में विफल रहने वाले व्यक्ति के खिलाफ अवमानना कार्यवाही दोहरे उद्देश्य को पूरा करती है;

(1) अवमाननापूर्ण आचरण की सजा द्वारा सार्वजनिक हित की पुष्टि और (2) तिरस्कार करने वाले को वह करने के लिए बाध्य करना जो कानून उससे चाहता है।"

एडवोकेट जनरल बिजार बनाम मध्य प्रदेश, खैर इंडस्ट्रीज (4) में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा:

“आचरण का एक तरीका जो न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग करता है और उसका मजाक बनाता है और जो इस प्रकार कार्रवाई के पक्षों से परे हानिकारक प्रभाव डालता है और न्याय प्रशासन में जनता के हित को प्रभावित करता है, उसे अवमानना के रूप में दंडित करना आवश्यक हो सकता है। न्यायालय के पास न्यायालय की अवमानना करने की शक्ति है, अपमान या चोट के खिलाफ अदालत की गरिमा की रक्षा करने के लिए नहीं, जैसा कि अभिव्यक्ति "न्यायालय की अवमानना" से प्रतीत होता है, बल्कि जनता के उस अधिकार की रक्षा और समर्थन करने के लिए है कि न्याय प्रशासन को रोका नहीं जाएगा, पूर्वाग्रह से बाधित या हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। यह रुकावट और आक्रोश के खिलाफ अपनी सक्रिय अभिव्यक्ति में, कानून की महिमा की पुष्टि करने का एक तरीका है।

हेडकिंसन बनाम हेडकिंसडन (5) में, यह आयोजित किया गया है:

“प्रत्येक व्यक्ति का यह स्पष्ट और अयोग्य दायित्व है कि जिसके विरुद्ध या जिसके संबंध में सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत ने आदेश दिया है, उसका पालन करें जब तक कि आदेश का निर्वहन न हो जाए। इस दायित्व की असम्बद्ध प्रकृति इस तथ्य से पता चलती है कि यह उन मामलों तक भी लागू होता है जहां आदेश से प्रभावित व्यक्ति इसे अनियमित या यहां तक कि शून्य मानते हैं।

फिर से जेनिसन बनाम पैकर (6) में, न्यायमूर्ति कोर्टिश रेले ने देखा -"क़ानून को यूं ही चुपचाप बैठे नहीं देखा जाना चाहिए, जबकि जो लोग इसकी अवहेलना करते हैं वे स्वतंत्र हो जाते हैं और जो लोग इसकी सुरक्षा चाहते हैं वे आशा खो देते हैं।"

बर्दकवता मिश्रा बनाम भीमसेन दीक्षित (7) में, .सर्वोच्च न्यायालय ने मनाया :-

“अदालत की अवमानना उसके अधिकार, न्याय, गरिमा के विपरीत कार्य करके अदालत की अवज्ञा है। यह अदालत के आदेश की जानबूझकर अवहेलना या अवज्ञा को दर्शाता है। यह ऐसे आचरण को भी दर्शाता है जो न्यायालय के अधिकार और कानून के प्रशासन को बदनाम करता है (17 कॉर्पस ज्यूरिस सेकुंडम पृष्ठ 5 और 6; एडवर्ड एन. डांसेल द्वारा अवमानना (1939) संस्करण पृष्ठ 14। ओसवाल्ड की अवमानना) कोर्ट (1910) संस्करण पृष्ठ 5 और 6.)"

ये अधिकारी स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, अदालत के आदेश का पालन करने के लिए बाध्य है।

सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पारित आदेश सभी संबंधित पक्षों के लिए बाध्यकारी है। जो लोग न्यायालय के आदेश की अवहेलना करते हैं, वे ऐसा अपने जोखिम पर करते हैं। कोई भी खुद को कानून से ऊपर नहीं सोच सकता है और अदालत का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि कार्यकारी अधिकारियों द्वारा अदालत के आदेशों की अवहेलना से अदालतों की संस्था में जनता का विश्वास न हिले।

(5) 1952 (2) ऑल.ई.आर. 567

(6) ए.एल.आर. 1972 (1) ऑल.ई.आर. 997

(7) ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 2466

हम न्यायालय की अवमानना अधिनियम की धारा 2(बी) में प्रयुक्त 'जानबूझकर' शब्द का भी विज्ञापन कर सकते हैं क्योंकि प्रतिवादी के विद्वान वकील ने जोरदार तर्क दिया है कि भले ही प्रतिवादी न्यायालय के आदेश का अनुपालन न करने का दोषी हो, लेकिन उसे न्यायालय के आदेश की जानबूझकर अवज्ञा करने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश, फिफ्टी संस्करण के अनुसार, 'इच्छाधारी' शब्द का अर्थ कुछ भी दोषारोपण योग्य नहीं है, बल्कि केवल यह है कि जिस व्यक्ति की कार्रवाई या डिफ़ॉल्ट अभिव्यक्ति का उपयोग किया जाता है वह एक स्वतंत्र एजेंट है और जो कुछ किया गया है वह उसकी इच्छा की सहज क्रिया से उत्पन्न होता है। इसका इससे अधिक कुछ मतलब नहीं है, कि वह जानता है कि वह क्या कर रहा है, और वह जो कर रहा है उसे करने का इरादा रखता है, और एक स्वतंत्र एजेंट है, जो जानबूझकर किया जाता है वह 'जानबूझकर' होता है। कॉन्सिस ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी में परिभाषित 'इच्छाधारी' का सामान्य अर्थ वह कार्य या अवस्था है जिसके लिए मजबूरी या अज्ञानता या दुर्घटना को विकृति या स्व-इच्छा के कारण जानबूझकर बहाना नहीं बनाया जा सकता है।

ब्लैक लॉ डिक्शनरी (संशोधित चौथा संस्करण) के अनुसार, 'इच्छाशक्ति' का तात्पर्य जानबूझकर और डिज़ाइन से किया गया कार्य है; "स्वच्छता" का अर्थ है दूसरों के अधिकारों की परवाह किए बिना कार्रवाई, देखभाल का पालन करने में जानबूझकर विफलता, दूसरों के अधिकारों का जानबूझकर आक्रमण, जानबूझकर अनियंत्रित कार्रवाई और "लापरवाही" परिणामों की उपेक्षा, एक उदासीनता चाहे कोई गलत या चोट पहुंचाई गई हो या नहीं और प्राकृतिक और संभावित परिणामों के प्रति उदासीनता।

स्टैनकोम्ब बनाम ट्रोब्रिज अर्बन डिस्ट्रिक्ट काउंसिल (8) में, न्यायमूर्ति वारिंगटन। कहा :

"मेरे निर्णय में यदि किसी व्यक्ति या निगम को किसी विशेष कार्य को करने से निषेधाज्ञा द्वारा रोका जाता है तो वह व्यक्ति या निगम निषेधाज्ञा का उल्लंघन करता है और अवमानना की प्रक्रिया के लिए उत्तरदायी है, यदि वह वास्तव में कार्य करता है, और यह नहीं है उत्तर में कहा गया है कि यह कार्य इस अर्थ में अपमानजनक नहीं था कि, ऐसा करने में, आदेश की अवज्ञा करने का कोई सीधा इरादा नहीं था। मुझे लगता है कि आदेश XLII नियम 31 में "जानबूझकर" अभिव्यक्ति का उद्देश्य केवल ऐसे आकस्मिक या आकस्मिक और जानबूझकर किए गए कार्यों को बाहर करना है, जैसा कि फेयरक्लो बनाम मैनचेस्टर शिप कैनाल कंपनी में संदर्भित है।

इस दृश्य का अनुसरण हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा लीओन्स ट्रांसपोर्ट लिमिटेड में किया गया। वी. परिवहन और सामान्य श्रमिक संघ (9)। हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने कहा:

“यह स्थापित करने के लिए कि अवज्ञा जानबूझकर की गई थी, यह दिखाना आवश्यक नहीं था कि यह

(8) (1910) 2 अध्याय. 190.

(9) (1972) (3) सभी। ई.आर. 101.

इस अर्थ में अपमानजनक था कि आदेश की अवज्ञा करने का सीधा इरादा था; यह दिखाने के लिए पर्याप्त था कि अवज्ञा आकस्मिक या आकस्मिक या अनजाने में नहीं थी।

हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने आगे कहा:

"यह उचित दृष्टिकोण भी है, क्योंकि जिस पक्ष के पक्ष में आदेश दिया गया है वह इसे लागू करने का हकदार है और न्याय के प्रभावी प्रशासन के लिए आम तौर पर यह आवश्यक है कि यदि अवज्ञा आकस्मिक, आकस्मिक या अनजाने से अधिक हो तो अदालत के आदेश की अवज्ञा के लिए कुछ जुर्माना लगाया जाए।।"

तारफतुल्लाह बनाम एस.एन.मैत्रा (10) में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने कहा था ,न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1926 के प्रावधानों से निपटा गया और निम्नानुसार देखा गया:

“जब किसी निगम के विरुद्ध निषेधाज्ञा दी जाती है, जो बाद में निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हुए कोई कार्य करता है या उसकी अनुमति देता है, तो यह आदेश की जानबूझकर अवज्ञा है और निगम के लिए यह कहना कोई जवाब नहीं होगा कि यह कार्य लापरवाही से या लापरवाही से या निगम के कर्मचारियों की ओर से कर्तव्य के प्रति लापरवाही के कारण हुआ था। यही सिद्धांत सरकार या राज्य के मामले में भी लागू होंगे, लेकिन इससे पहले कि सरकार के किसी एक अधिकारी को उत्तरदायी ठहराया जा सके,यह स्थापित किया जाना चाहिए कि वह उस विषय वस्तु का प्रभारी व्यक्ति था जिसके लिए निषेधाज्ञा या आदेश दिया गया था; अवज्ञा करने का आरोप लगाया गया है, संबंधित है और जब तक यह स्थापित नहीं हो जाता, किसी व्यक्तिगत अधिकारी के खिलाफ कोई भी मामला सफल नहीं हो सकता।

उपरोक्त उद्धृत शब्दकोष से 'इच्छाधारी' शब्द का अर्थ और न्यायालयों के निर्णय, यह निष्कर्ष निकालना उचित है कि न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 2(बी) में प्रयुक्त शब्द 'जानबूझकर अवज्ञा' का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता है कि सभी मामलों में एक अधिनियम को सिविल अवमानना के रूप में माना जाने के लिए डिज़ाइन किया जाना चाहिए और जानबूझकर किया जाना चाहिए।यदि कोई पक्ष, जो अदालत के आदेश के बारे में पूरी तरह से जानता है या अदालत के आदेश के परिणामों और निहितार्थों से अवगत है, इसकी अनदेखी करता है या अदालत के आदेश का उल्लंघन करता है, तो यह माना जाना चाहिए कि अवज्ञा जानबूझकर की गई है। हमारे विचार में आमतौर पर कार्य या चूक के पीछे के वास्तविक इरादे को साबित करना कभी भी व्यावहारिक नहीं होता है।एक अदालत इस प्रश्न पर केवल निष्पक्ष रूप से विचार कर सकती है और वह किए गए कार्य से इरादे का अनुमान लगा सकती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति से यह माना जाता है कि वह अपने कार्य के संभावित परिणाम का इरादा रखता है।

अब हम यह तय करने के लिए प्रतिवादी के स्पष्टीकरण की जांच कर सकते हैं कि उसने अदालत की अवमानना की है या नहीं। एक बार फिर इस बात पर जोर देना जरूरी है कि उच्च न्यायालय ने अपने

(10) 1953 सीआरएल.एल.जे. 13

आदेश दिनांक 3 दिसंबर, 1992 के जरिए याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पिछली याचिका का फैसला किया था और कार्यकारी अभियंता सहित याचिका में उत्तरदाताओं को एक स्पष्ट निर्देश दिया था कि पियारा सिंह के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले और उस फैसले के बाद सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देशों के अनुरूप नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ताओं के मामलों पर विचार करें। उच्च न्यायालय का न तो इरादा था और न ही वह इरादा कर सकता था कि इस अदालत के आदेश का अनुपालन सरकार द्वारा जारी किए जाने वाले कुछ भविष्य के निर्देशों पर निर्भर करेगा। हमारे लिए यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने पियारा सिंह के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले और पियारा सिंह के बाद लेकिन 3 दिसंबर, 1992 से पहले , सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार याचिकाकर्ताओं के मामलों से निपटने के लिए कार्यकारी अभियंता सहित प्रतिवादियों को निर्देश दिया था। इसलिए , प्रतिवादी के लिए यह जरूरी था कि वह 10 साल तक सेवा करने के बाद सेवा के नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे की जांच करे। प्रतिवादी ने न्यायालय के आदेश का अनुपालन करने के लिए कुछ नहीं किया। उनकी यह दलील अविश्वसनीय है कि उन्हें 6 अप्रैल, 1990 के उस सर्कुलर की जानकारी नहीं थी, जिसे हरियाणा सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष पेश किया था। यदि प्रतिवादी ने सुप्रीम कोर्ट के फैसले और उसके द्वारा दिए गए निर्देश को ध्यान से पढ़ने में थोड़ी सी भी परेशानी की होती, तो उसके लिए इस तथ्य को नजरअंदाज करना संभव नहीं होता कि जिन लोगों ने 10 साल की सेवा पूरी कर ली है, उन्हें सेवा में नियमित होने का अधिकार मिल गया है। प्रतिवादी ने जानबूझकर न्यायालय के निर्देश का अनुपालन करने से परहेज किया। मामले में कोई कदम उठाने

में उनकी चूक उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश की अवहेलना करने के उनके इरादे को स्पष्ट करती है। इसलिए, प्रतिवादी का स्पष्टीकरण कि वह सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए निर्देश से पूरी तरह परिचित नहीं था, खारिज किए जाने योग्य है। प्रतिवादी का स्पष्टीकरण भी उतना ही बेकार है कि सरकार ने 27 मई, 1993 को निर्देश और 18 मार्च, 1994 और 31 मई, 1994 को स्पष्टीकरण जारी किए थे और इसलिए, वह 31 मई, 1994 तक आदेश का पालन नहीं कर सका। जहां तक उनका सवाल है, प्रतिवादी ने इंजीनियर-इन-चीफ, पी.डब्ल्यूजे> (बी एंड आर) हरियाणा या सरकार के किसी अन्य प्राधिकारी को सरकार द्वारा जारी किए गए पहले के निर्देशों के अनुपालन में कोई कठिनाई व्यक्त करने का कोई संदर्भ नहीं दिया। उन्होंने कभी भी अपने वरिष्ठों से इस मामले में मार्गदर्शन देने के लिए नहीं कहा। वह संभवतः यह दलील नहीं दे सकते कि उन्हें इस तथ्य की जानकारी थी कि कार्य प्रभारित, दैनिक वेतनभोगी और कैजुअल कर्मचारियों की सेवा के नियमितीकरण के सवाल पर सरकार द्वारा कुछ निर्देश जारी किये जायेंगे। वास्तव में 27 मई, 1993 को जारी निर्देश और सरकार द्वारा बाद में दिए गए स्पष्टीकरणों का याचिकाकर्ताओं के इस आधार पर सेवा को नियमित करने के दावे पर कोई भरोसा नहीं है कि उन्होंने 10 साल की सेवा पूरी कर ली है और पियारा सिंह मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के लाभ के हकदार थे। 27 मई, 1993 के परिपत्र और उसके बाद सरकार द्वारा जारी किए गए स्पष्टीकरण, जो 5 साल की सेवा पूरी कर चुके कर्मचारियों की सेवा को नियमित करने से संबंधित था, का संदर्भ देकर अदालत को गुमराह करने का प्रयास किया गया है। हमारी सुविचारित राय में प्रतिवादी द्वारा अदालत के आदेश के अनुपालन से बचने के लिए 27 मई, 1993 के परिपत्र और उसके बाद के स्पष्टीकरणों की आड़ लेना उचित नहीं है। हमारी यह भी राय है कि 21 जुलाई 1994 (अनुलग्नक आर/5) का आदेश पारित करके, प्रतिवादी ने न्यायालय के आदेश की पूर्ण अवहेलना करने के अपने इरादे को प्रदर्शित किया है।

हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं उसके अलावा, अर्थात् प्रतिवादी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण न्यायालय के आदेश की अवज्ञा के आरोप का कोई स्पष्टीकरण नहीं है। हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि एक बार जब न्यायालय द्वारा कोई आदेश दिया जाता है और किसी व्यक्ति पर उस आदेश का अनुपालन न करने का आरोप लगाया जाता है, तो वह यह दलील नहीं दे सकता कि वह अपने वरिष्ठों के निर्देशों का इंतजार कर रहा था। कोई भी व्यक्ति जो न्यायालय के आदेश का अनुपालन करने के लिए बाध्य है, संभवतः यह तर्क नहीं दे सकता है कि उसे न्यायालय के आदेश का अनुपालन करने के अपने दायित्व को पूरा करने से पहले अपने वरिष्ठों से निर्देश लेना होगा। यदि सरकार और उसके पदाधिकारियों को कुछ नियमों या उच्च अधिकारियों के निर्देशों के अनुपालन के मामूली बहाने पर न्यायालय के आदेश की अवहेलना या अवहेलना करने का लाइसेंस दे दिया जाए तो न्याय प्रशासन की व्यवस्था जिस भवन पर टिकी हुई है वह ध्वस्त हो जाएगी।

तालुरी शेषैया और एक अन्य बनाम एम. नारायण राव (11) मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष एक समान तर्क दिया गया था, और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने इस तर्क को निम्नलिखित शब्दों में खारिज कर दिया: -

"जब उच्च न्यायालय का कोई आदेश किसी व्यक्ति को कुछ करने का निर्देश देता है या कुछ करने से चूकता है। यह उस व्यक्ति का दायित्व है कि वह अपने मन में किसी भी संदेह या झिझक के बिना तुरंत उस आदेश का पालन करे। यह बहाना कि उसे उच्च अधिकारियों द्वारा गलतियाँ मिल सकती हैं या उसे न्यायालय के आदेशों का अनुपालन करने से पहले उच्च अधिकारियों से परामर्श लेना चाहिए, क्या उसका कोई फायदा नहीं हो सकता है जब उससे कारण बताने के लिए कहा जाता है कि उसे अवमानना के लिए प्रतिबद्ध क्यों नहीं होना चाहिए। कोई भी वरिष्ठ अधिकारी न्यायालय के आदेशों के अनुपालन के लिए अपने किसी अधीनस्थ के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं कर सकता है"।

न्यायालय के आदेशों के अनुपालन में किसी भी कारण से झिझक या देरी से जुड़े जोखिम गंभीर हैं, और उनकी अवहेलना करने या उनका अनुपालन न करने वाला व्यक्ति अकेले ही परिणामों के लिए जिम्मेदार होगा और उसे यह कहते हुए नहीं सुना जा सकता कि उसने मामला अपने आधिकारिक वरिष्ठों को भेज दिया है, और इस मामले में उसका आधिकारिक वरिष्ठ उसे किसी भी प्रकार की सुरक्षा नहीं दे सकता है। कानून के हाथ इतने लंबे हैं कि वे स्वयं वरिष्ठ अधिकारियों तक भी पहुंच सकते हैं यदि वे न्यायालय के आदेशों के विपरीत निर्देश देते हैं, या अधीनस्थ अधिकारियों को यह आभास देते हैं कि उनकी मंजूरी के बिना न्यायालय के आदेशों का अनुपालन करने पर उन्हें अनुशासनात्मक कार्रवाई का सामना करना पड़ेगा"।

ऊपर बताए गए कारणों से, हम प्रतिवादी एन.एस. कंवर को 1990 के सी.डब्ल्यू.पी 1093 में 3 दिसंबर, 1992 को दिए गए निर्देश का अनुपालन न करने के कारण अदालत की अवमानना का दोषी मानते हैं।

प्रतिवादी को न्यायालय की अवमानना का दोषी ठहराने के बाद, अब हम 1 मुद्दे की जांच कर सकते हैं

(11) 1967 सीआरएल.एल.जे. 19

कि क्या उसके द्वारा मांगी गई माफी स्वीकार की जानी चाहिए या नहीं। इस संबंध में, हम ध्यान दे सकते हैं कि यद्यपि प्रतिवादी ने पर्याप्त लंबे समय तक न्यायालय के आदेश का पालन नहीं किया, लेकिन अवमानना का नोटिस प्राप्त होने के बाद उसने 31 जुलाई, 1994 को आदेश पारित किया और साथ ही अयोग्य माफी भी मांगी। इसके बाद, उन्होंने 8 अगस्त, 1994 को दो और आदेश पारित किए (अनुलग्नक आर/9 और आर/10) जिसमें दोनों याचिकाकर्ताओं को 1 अक्टूबर, 1988 से सेवा के नियमितीकरण का लाभ दिया गया। इसके अलावा प्रतिवादी के विद्वान वकील ने बयान दिया है कि याचिकाकर्ताओं को एक महीने की अवधि के भीतर सभी परिणामी लाभों का भुगतान किया जाएगा। इससे पता चलता है कि कम से कम अवमानना का नोटिस प्राप्त होने के बाद, प्रतिवादी ने 3 दिसंबर, 1992 के न्यायालय के आदेश के अनुपालन के लिए कदम उठाए हैं।इन आदेशों और प्रतिवादी द्वारा की गई अयोग्य माफी के मद्देनजर, हम प्रतिवादी पर कोई ठोस सजा लगाना उचित नहीं मानते हैं। हमारी राय में न्याय का उद्देश्य प्रतिवादी को कड़ी फटकार लगाने से होगा।

परिणामस्वरूप, प्रतिवादी को अदालत की अवमानना का दोषी ठहराया जाता है, लेकिन कड़ी चेतावनी देकर छोड़ दिया जाता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी की चूक के कारण याचिकाकर्ताओं को उच्च न्यायालय में दूसरी याचिका दायर करने के लिए मजबूर होना पड़ा है। न्यायालय के आदेश का अनुपालन करते हुए, हम निर्देश देते हैं कि प्रतिवादी प्रत्येक याचिकाकर्ता को 1,000 रु. लागत का भुगतान करेगा|

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अँग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

Checked By:
Prerna Arya
Trainee Judicial Officer
Chandigarh Judicial Academy,
Chandigarh